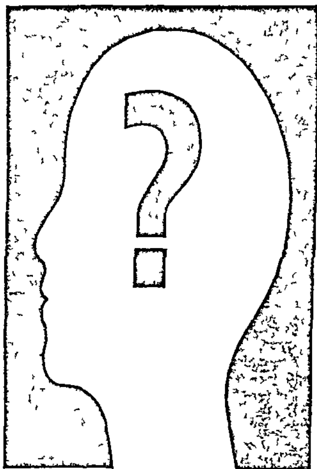
कैप्रीकार्न पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर

तब क्या सोचोगे



राजानन्द

© डॉ राजानन्द

प्रकाशक कैप्रीकार्न पब्लिशिंग हाऊस
4/363 मालवीय नगर जयपुर-17

संस्करण 1996

मूल्य 80/

आवरण हरिप्रकाश त्यागी

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स बीकानेर

TAB KYA SHOCHOGHE (Poems) By RAJANAND @ Rs 80/

बस इतना ही

कविता मेरे लिये प्रतिक्रिया है। मेरा एक व्यक्तित्व है जो सक्रीय जिदगी के बीच है। समयगत परिस्थितिया तथा परिवेश परिवर्तित होते है, जैसा इनका स्वभाव है। मेरा व्यक्तित्व भी परिवर्तनशील है। जैसा व्यक्तित्व का स्वभाव हुआ करता है। अत सरोकार और प्रतिक्रिया का रहना और उसका अभिव्यक्त होना मेरे होने की शर्त है। मैने साहित्य को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना अत मेरे साहित्यिक सस्कारो का दखल होना-मेरे सोच और उहापोहो का भी दखल अनिवार्य है। मै अपनी सीमाओ और क्षमताओ के मुताबिक इसी प्रेय-श्रेय के साथ साहित्य सृजन करता रहा हू विधा का स्वरूप चाहे कथा हो, उपन्यास हो नाटक या कविता अथवा कुछ भी। स्तर और कलात्मकता को मैं रचना मे अतस्थ मानता हू। अत मेरे लिये कलात्मकता अगर स्वाभाविक नही है, आग्रह के अथवा प्रदर्शन के साथ है तो मान्य नही है।

राजानन्द

2/30 मुक्ता प्रसाद कालोनी
बीकानेर

क्रम

राष्ट्रोत्सव

उपसहार

मुझ से तुम तक

फिर फिर गया

कितने देवता !
और यह छोटा मन्दिर
खड़ा पीठिका पर
विना मूर्ति ।
मैने जव भी
उतारी साकल
खोले कपाट
अदर गूजी
मेरी स्वासो की ध्वनि ।
क्या मे उस गूज
को पूजता ?
वह तो थी मेरी प्रतिध्वनि ।
जैसा गया था
वैसा लौट आया ।
फिर फिर गया

नास्तिक आस्तिक

मै कभी नही रहा
नास्तिक,
जानता था जी नही सकता था
किसी आस्था के बगैर ।

एक यह सख्त जमीन थी
दूसरा हाथ फैलाये आकाश
न मै प्रतिक्रिया रहित था,
न जमीन,
न आकाश ।

सूरज, चाद, नक्षत्र, तारे,
हमेशा पूछते थे हाल
भेजते थे शुभकामनाए ।

उन्होने
शायद रखा था
मेरा छवि-चित्र-
मैंने उन्हे नही दिया था ।

वे कभी उसे मुकुट पहनाते,
कभी वैजयती,
कभी हाथो मे सम्भला देते
शख सुदर्शन-चक्र ।

मै चकित होता
फिर वशीभूत ।
वही तो थी छवि

जिस से प्रेरित
मैने लड़ी लड़ाइया
उदर की, भावनाओ की,
विचारो की, रास्तो की ।
मै आत्म आसक्त
किसी वचना मे नही रहा ।

किरनो की रग राशिया
जो हर चेहरे से
मेरी आखो मे समाई,
वही मेरा मोह थी
और, सौंदर्य, सुरभि ।
मैंने इन्ही रगो-गधो को
आत्मा दी ।

मैं कैसे हो सकता हू
बुत-शिकन ।
मै ईश्वर के बगेर रह
सकता हू
इन अनत छवियो के बगैर नही ।

मुझसे तुम तक

वही हू
ज्योतिर गोलक का
स्वर्ण-कन
जो आर्द्र हुआ
फिर सागर ।

पर बीज था,
बुनता रहा नाभि-बुनकर
रेशे रेशे माया ।

चचला तो थी पवन
जड़ती रही रतन
फूलछड़ी मे
नख-शिख ।

महक थी कृतत्व की
नितरता रहा
मेरा अमृत
अर्क-सा
कतरे-कतरे ।

अश ही था
उस आदि नाद का
इसलिए
सजाता रहा सृष्टि
शब्दो की
मुझ से, तुम तक ।

सर्प-दंश

कहीं, वहीं था
वह सर्प
बिना फनवाला,
गुड़मुड़ी मारे बैठा था
तुम्हारे क्षीर सागर मे।

कैसे वह पैरा,
उछल कर डसा,
कापने लगे तंत्र
नीला पड़ने लगा रक्त।

दुनिया, जो अद्भुत थी
दीखने लगी पीली।

विक्षिप्त तुम,
आक्रामक हुए -
स्वय के हंता।

महसूस तो हुए होगे
उग आए झबरे रोए
तीखे नख!

नरभक्षी नही थे तुम,
जन्मना
नारायण थ।

अपने तक आओ

तुम डरे क्यो ?
डरे तो घबराए क्यो ?
घबराए तो उक्ताए क्यो ?
क्या इसलिए
कि तुम्हारा लगाया गुलाब
याकयक, खिलते-न-खिलते
सूख गया ।

कि दुनिया
खासी चैन की बसी
बजा रही थी
अचानक युद्ध के फेंटे मे
भावशून्य हो गई ।

कि तुम्हारा सपना
जिसे सोपा था आया की
देख-रेख मे,
उसे उसने शोहदो को
रहन कर दिया ।

कि वह सर्वशक्तिमान
जिसे तुम पालनहार समझते थे
तलाशने लगा सुरक्षित-लोक ।
पर,तुम्हारे भयभीत होने से,
घबराने, उफतने से, क्या होगा ?
आत्म हत्या या हत्याए तो
कर नही सकते ।

अपने तक ही आओ,
खोजो वह अमृत-फल
जो तुम्हे हरा भरा करे।
अपने प्राणो की गति को
प्रकाश-ताप दो
कि कायाकल्प
स्वय के हवन से हुआ
करता है।

काल तो
पैर-कटा दृष्य है।
तुम ही हो
अग्नि-मत्र
तेजस जत्र।

मधु मक्खी ने पूछा

हर दिशा मे
सघन वृक्ष हैं
और हर वृक्ष पर
मधु-गृह।
हर मधु-निकेतन मे
हजारो मधु मक्खिया हैं
जो पराग एकत्रित कर
मुहामुह भरती है
प्रत्येक मधु-प्रकोष्ठ।

मधु मक्खियो का कोई नाम
नही है-महारानी भी है,
शेष वन्दोवस्ती।
एक जान है सव
अलग अलग प्राणवत होकर।
एक कल्पना के तहत है
वहुरगी उड़ाने
जीवन यात्राओ की अनुपालक।

मेने भी
वाग-वाग
फूल फूल से चुना है श्रेष्ठ
जैसे तुमने, तुमने,
अपरिचितो ने।
और रज कर
अपनी धातु से,
रस से, रक्त से,

अपने विवेक से,
अपनी भावनाओ से,
देता गया वृहद कोष को
नाम की पर्ची हटा ।

नाम का हटाना
नगण्य होना नही था,
समय इतना-ही करता है
कुछ वर्षो तक
सग्रहालय मे रखकर
फिर भेज देता है
अभिलेखागार मे ।
मधु मक्खी ने पूछा - कितने दिन और ?
मैने उससे पूछा - कितने दिन और ?
और दोनो अपनी दिशा मे
चलदिए मधु एकत्रित करने ।

मैने तुम से पूछा - कितने दिन और ?
तुम उत्तर से कतरा कर
नाम से चिपके चले गए–शायद उदास,
या नाराज ।

मेरा वैसा अभिप्राय नही था कि
तुम्हारी धुन तोड़ना ।

मधु मक्खी ने मुझ से पूछा था
मैने तुम से पूछ लिया
अन उत्तरित सत्य ।

अश्वत्थ

जब सब सो रहे है
अपना अश्वत्थ
दिन मे बेचकर-
थके-मादे, श्लथ,
तब सूनी सड़क पर
दूधिया विद्युत
जैसे फरोर रही है किताब
कि भिनसारे
उसे किसी परीक्षा मे बैठना है।

चादनी को कोई नही बरजता
कि क्यो दूसरो की
खिड़किया खटकाती है ?
क्या जरूरत है
कि वह खोले अदीखी उगलियो से
कपाट।

लोग नही चाहते
दिन का कोहराम
रात को भी खोले
उन का बहीखाता!
वो निस्तब्धता चाहते है-
अपनी सासो से भी
बेखबरी।
कि तन भी
हो जाए अस्तित्वहीन
और मे' भी।

वह 'मै',
जिसका अहसास भर
अधे कुए की
बेचैन गूज बना हुआ
भनभनाता है
षट-पद की तरह ।

वो क्यो हो
नन्ही-सी जान वाले पाखी
कि रोशनी के नीचे
सुबह उनका शव मिले ।

वो चाहते हैं
निर्विकल्प नीद,
दिन ही काफी है
लूगड़ पीजने के लिए ।
वही क्रम
और निरर्थक
खपते जाने की विवशता ।
रात हो-
नीलम देश की राजकुमारी ।

बस, वो न हो
अपने विक्षत 'मैं' की
मरहम-पट्टी करते हुए ।
कि हल्दी लेपते हुए
अन्दरूनी सूजनो पर ।

तब क्या सोचोगे !

अब तुम
नाकारा सोचते हो
कारगर सोचते, तो
क्या सोचते !
जब निशाना साध कर
प्राप्त किया
तब वे छोटे-छोटे सुख थे
अल्पकालिक,
उड़नेवाले रंगो की तरह
उड़ गए -तुम रह गए
रीते-के-रीते ।

प्यास तो जंगल थी
तुमने उस सरोवर का जल
बार-बार क्यों पिया
जो अपने सवाल के उत्तर की
शर्त लगाता रहा ?
न उसके सवाल रुके
न तुम्हारा पुनर्जीवित होना ।

क्या सोचते हो
कोई खास सत्य
हथेली पर उग आएगा ?

खुशफहमी के कलश का
जब भी मुंह खुला
तुम अवसाद से आवृत
हो गए ।
खुद में से निकलकर

ताकने लगे सन्नाटा।
सोचने लगे –यह क्या !यह क्यों !!

ज्यादा मत सोचो
सुख पर, सत्य पर, उदासी पर,
वह धोवन होगी
दूसरे के द्वारा दी गई।

और अगर यह तुम्हारा सत्य हुआ,
खिलाफ-गवाह हो जाएगा किसी वक्त।
सरक जाएगा
अनामिका से
मुद्रिका की तरह।

एवजी

तुम्हारी एवजी
मे नही हो सकता
या वह ।
तुम्हे चढ़ने होगे श्रग
(पसीने और लड़खड़ाहट के बीच)
पार करनी होगी नदी
(भीगने फिसलने के बावजूद)

गोते के बाद
मिल सकते है शख
मुह-फटी सीपिया
या घोघे ।
भागते हुए मरु मे
तरस सकते हो कतरे के लिए ।
होगे तुम्ही
सीना फुलाए या चेहरा लटकाए ।

किसी का एवजी
कैसे हो सकता है दूसरा-तीसरा ?

इस दुनिया को
खोलना-लपेटना
फेलाना-सिकोड़ना
सहना-कौचना
तुम्हे ही होगा ।

तुम्ही हो अतिथि
यह तो सतत है ।

मागलिक-कलश

मेरे पूर्ववर्ती
वहुत से
उस दिशा मे जाते दीखे
जहा साझ थी
और नारगी आभा,
नीचे से उठता
झुटपुट धुधलका ।

वे सव
तथागत थे
क्यो कि हरएक के साथ
आलोक-वृत था ।
मैने उन्हे वाजार, बन,
मरुस्थल मे अक्सर अवलोका ।

वे टहलते नही थे
कुछ अटी से देते होते थे
कुछ झोले मे रखते होते थे ।
वे कभी मुस्कराते थे
कभी गम्भीरता मे सोचग्रस्त होते ।
कभी धूप सोखते
कभी वृक्षो की शाखाओ पर
फूल सजाते मिलते ।

मैने उनकी पगथली के निशान देखे,
चिट्टी चादर पर
हथेलियो की छाप ।
आश्चर्य कि उनकी हस्त-रेखाए

फर्क-फर्क थीं
लेकिन उन मे सगीत था ।

मैंने प्राय
उसे सुना
वह भोर की मदिर-ध्वनि
और मस्जिद की अजान सा
अतस्थ होता रहा ।

उन पूर्ववर्तियो के अस्थि-कलश
मेरे लिये अशोक पत्र
व नारियल से ढके
कालातीत
मागलिक कलश है ।

स्मृति नाभि

जब एक अवधि
गुजर जाती है, रह जाते है
सूक्ष्म चिन्ह ।
वही होते है आवर्धित
रहता नही रूप-तत्व ।
हा सिर्फ नाभि
मूल बीजो से सयुक्त ।

वही तो होते है
जहा होता है किसी का
अपूर्व ससार,
उसका अद्भुत अभियान
खोज का ।
हिमाच्छादित होती है श्रग
आर्द्र धरती पावस की ।
चिलचिलाते मरु
जो जाचते है पित्ता
उस नौ सिखुए का ।

सुख दु ख होते है
मापक ।
बोध ,
कीमती अर्क-सा
नितरता है कोष मे ।
अनुभूतियो का
होता है प्रखर मथन
प्रकट होते है –विष-घट, अमृत-कलश ।
उसको होना होता है

नील कठ
मोहिनी-रूपा विश्वम्भर ।
तव अवतरित होता है
सतयुग ।
सुनहरी धूप थपथपाती है
सेलानी को,
तमिस्र
विभावरी के तारे छीटता है
अनीदी रात मे ।

सकल्प शून्य होता ही नहीं
किसी क्षणाश,
वह स्वय-दीक्षित परिव्राजक ।
उसका सत्य
उसका होता है ।
उसकी बेतरतीव यात्रा, उसकी ।

रहती है नाभि
स्मृति म
यही तो व्याख्या सूत्र है
उसके आरम्भ
उसके अभियान
उसके विसर्जन
उसके सम्पूर्ण कर्मयोग का
उसके शोध निषकर्षो का
जिसे वह समय के इकहरे सफे पर
लिख जाता है ।

आख मूदते हुए कहूगा

इतना आसान नही है
तुम छुओ
में थर्रा जाऊ ।
जिसने कहा -
तुम खौफनाक हो
वह कजूस होगा ।
तुम आना
मेरे सिरहाने बैठकर
कहना-चलो !

मै तुम्हारा चेहरा देखूगा
(निश्चित, उतना ही खूबसूरत
होगा जितनी जिन्दगी !)
और आखे मूदते हुए
कहूगा-चलो ।

देह तो देह है

हरा कागज

बरसात तो हुई थी
रात ।
कितनी अंधियारी थी ?
बिजली की रेखा भर
दिखी थी ।

झालर-सा
जगर-मगर कर रहा था
शहर ।

सुबह देखा
घास पर छितरे थे
मोती,
पेड़ों पर रंगरेजी बूंदे ।
लगा कि हरे कागज पर
लिखी गई
मुस्कराती कविता ।

नि स्पद

ऊपर ही ऊपर
पैरता है हरियाला वाग ।
जल, जो साधता है उसे
हर्गिज नही होता वतोकड़ा ।

किनारे पर खड़े लोग
देखते है दृश्य
यथार्थ के वाहर होकर ।

उदय होता है सूर्य
फिर अस्त,
जैसे सत्ताए तिरती है
होती हे नि स्पद ।

स्तब्ध है सृष्टि

चट्टानो से दवा जल
प्रतीक्षा करता है
कि पत्थर चिटके
वह उछले बहे।

हरियाये वृक्ष
की शाख-शाख मे
रस उद्विग्न रहता है
कि बने फूल-फल
और गदराये।

अधेरे मे गुड़ी-मुड़ी
जीव, कुनमुनाता है
कि कब मा दर्दाए
वह उजाले का पहला
क्षण देखे।

तुम्हारे न होने से
बेचैन होते हे शब्द
कि कव मौन टूटे
अभिव्यक्ति खुल पाए।

काल तो
वधा है घटना से
मै हू
और तुम नही हो—
यानी स्तब्ध है सृष्टि।

शब्द कोष

देह तो देह
इसका रोया रोया
विद्युत-प्रवाही है।
तुम उषा को नमस्कार
करती हो,
धूप से हत्ती-थत्ती
करती हो,
फूलों को लाड़ देती हो
तारों को परी-कथा सुनाती हो।
मेरी आँखों में
कौन सा शब्द कोष पढ़ती हो
कि व्यग्र हो जाती हो
जैसे रची कविता
सस्वर होने को उत्सुक।

दुविधा

छटता जाता है
कुहासा ।

एक माया
जो काई-सी तहर
रही थी
खुश्क होकर कगार
हो गई ।

मैने देखा तुम्हे
नीर की सतह पर ।

आश्चर्य !
वह तो मेरा चेहरा था ।

आभास था
या सत्य (!)

वही तो देगा कुमकुम पत्री

दौड़ना मत
पीछे की तरफ ।

हो सकता है
बसत उलझा ले,
या रेत -
जिस से छाले हुए थे
पैरो मे
उधार चाँदनी छवा ले ।

वह, जो दस्तक दे रहा है
उससे पूछना - कैसे आए ?

वही तो देगा कुमकुम पत्री
कि कहाँ मडप है,
कि अमुक तिथि को
वहाँ होना है ।

होता है जैसे यज्ञ

जब जब तुम्हे पाया
पाया देह से इतर
और तुम्हारा इतर होना
मेघ हो जाना था
छाना ओर-छोर आकाश मे ।

मै होता हू तरेड़े-खाई धरती ।

बहुत गहरे, बहुत गहरे है
नीर ।

तुम बरसती हो,
मै तर हो जाता हू ।

तुम रिक्त होती हो,
मै फूट पड़ता हू
बेचैन सोते-सा ।

तुम रोपती हो मुझमे नक्षत्र
मै तुममे किरनो की सतलड़ी ।

होता है जैसे यज्ञ ।

धुध

यात्राओ
और यात्रा के बीच
खण्डित वर्तमान है
ओझल भविष्य–
धुध, धुआ, धूसर ।

किसकी पुकार पर
तलाशने चले हो पदाक्रात रिश्ते ?
आदमी नही रहा
उसके खण्डहर मे पाओगे
रक्त-यज्ञ
खप्पर-साधना
कुक्षि-उपासना ।

इतने फैले जन विस्तार मे
डबरे है शब्द के
रेगते हे रीढ़ हीन कीड़े ।

कास्य की मूर्ति

किसने बनाया
धातुओ को पिघलाकर !
तुम्हे दी पुष्ट आबनूसी देह
बिठा दिया झूले पर
निर्वस्त्र
अधर हवा मे ।
तुम्हारी निष्कपट
दृष्टि है,
प्रफुल्ल अग
तड़कते फल-सा वक्ष
नाभि मे किलकता बचपन ।
अगूठे पर टिकादिया
उचकता भार ।
कहो तो मै
तुम्हारा झुलना
झुला दू –
हसोगी ना !

रुका है जो

रुका है जो
वह समय नही है
मेरा अत है ।
न दिशामुख
न घोमुख ।
अपने को ही
नही टोह पाता
कूट कूप मे ।

अपनी पाख देख

करता है गुमान
इतराता है मोरिया
बादली को निरख।
बादली ही बोली –
मत कर आस,
मातहत हू हवा की।
इधर ठहराए
या उस ठौर ले जाए
कि तरलता चुक जाए
नीर बीत जाए,
कोख, करमजली रह जाए।
मोरिया!
अपनी पाख देख
अपनी बाक।

तैर आया तीरे

तैर आया तीरे

किस को पता था
मछुवो की नाव
डालते डालते जाल
उलझ जाएगी
लहरो के व्यूह मे।
वे, जो प्रर्थना करते
रहे,
डूब गये।
मै तैर आया तीरे।

सत्य

मेरे भ्रम
तुम्हारे भ्रम से
ज्यादा सत्य है
क्यो कि वे भ्रम है।

मै कृति

बगटूट भावचित्र
मचाते हैं उत्पात ।
एकाग्र मौन
लिखता है मुझे ।
मै   कृति ।

पहिचान

दिशा ने
मुझे नही, मैंने
दिशा को पहिचाना।
उनसे क्या पूछता
जो राह मे
पूछ रहे थे
अपना अर्थ।

सघर्ष

नही होता पूरा
सघर्ष,
गोता तोड़कर
निकल आता हू बाहर ।
धूप की-
सेक। फुरफुरी ।
फिर कूद पड़ता हू
अथाह मे ।

घाट ही घाट

जनम के साथ
अजीब हाट !
बाट-ही-बाट
घाट-ही-घाट ।

क्या पाया।

हिरन।
क्यो हुए कस्तूरी।
खुद भ्रमे
मुझे भरमाया।
तीर के सिवाय
क्या पाया ?

याद

हूक उठती है
रुकती है ।
तुम्हारी याद
छपक-छइया खेलती है ।

स्मृति

सासो मे
गुथ आया है अतीत
इसे सदर्भहीन रहने दो ।
साझ का डूबता सूरज
अनलिखा प्राक्कथन होता है
भोर का ।

पत्थर

पत्थर तो पत्थर था
पड़ा था समुद्र के किनारे
अनाथ ।
ऐसा होता है निर्मम पिता
कर देता है लहरो के हवाले ।
आखो के सूराख
चपटी नाक
ढलुवा खोपड़ी -
मैने उठा लिया उसे ।
जूट के बाल चिपकाए
फर की काली दाढ़ी
रख दिया बैठकखाने मे ।
अब,
जो भी आता है
देखता है उसे
अन्यमनस्क होता है ।
उतारता है चेहरा–
फिर वह हसता है
अपने पर ।

अन्दर था लावा

जिसको
समझते थे अफलातू
बिखरा, कि खील-खील
हो गया ।
किर्च-किर्च
हिम से हुआ था पहाड,
किरनो को रास-रग बाटता
चक्रवर्ती ।
अन्दर था विग्रह
लावे का
पहाड़ - सा - पहाड़
तितर-बितर हो गया ।

निरतरता

जो बनता है
वही टूटता है यार !
क्योंकि खिरता है
रफ्ता-रफ्ता ।
बीज से कुल्ला फूटा
धरती भी हुई खुश
धूप भी, मै भी ।
हुआ बालिश्त भर,
हाथ भर,
फिर पत्तियाया, हर्षाया,
रात दिन
दिन रात ।
जाने नजर लगी
मौसम की, कि उम्र की,
कुम्हलाया,
हुआ झुर-झुर ।
एक फूल
जो सूख रहा था
ताप-तपिश मे, बोला-
उदास मत हो पुत्र !
मैने सेत रखे हैं बीज
सब अवतार लेगे
होकर
भूमिगत ।

मेरा पोता

मेरा पोता
अगुली के सकेत के साथ
कहता है-मैं आपको
च्यवनप्राश नही दूगा
रोटी भी नही दूगा ।
मै कहता हू—मै चला जाऊगा
वह अपनी तानाशाही
दिखाता हुआ कहता है-जाओगे कैसे,
ताला लगा दूगा ।
मैं हसकर कहता हू-मे फुर्र हो जाऊगा ।
वह मेरी बाह पकड़ता है, बोलता जाता है ।
जाओगे।
बताओ जाओगे !!
नही जाने दूगा ।
तब केसे जाओगे ?
मै उसे वेसाख़्ता गले लगा लेता हू ।

राष्ट्रोत्सव

राष्ट्रोत्सव

हम खोदे जाएगे
खोदे जाएगे वह कब्र
जहा हमारी स्वतत्रता,
निर्णयो का विकल्प दफना है ।

हम उस अनब्याही मा के पास
उसका जारज बच्चा लिटाएगे
जिसको पालनगृह के नाम
न अनाथालय मिला
न शरणार्थी शिविर ।

हम चाहेगे
उस मरी हुई मा पर
सफेदा पोते,
उसे मूर्ति की भव्यता दे,
उसके जीवित बच्चे के मुह मे
मूर्ति का पयोधर दे दे ।

हम आख मूदे, श्रद्धानत,
खड़े रहकर गाएगे रामधुन
तब तक, जब तक, जारज मर नही जाता ।

तब हम उस पर भी
सफेदा पोत
उस वत्सल प्रतिमा के समक्ष
हर वर्ष राष्ट्रोत्सव मनाएगे ।

ओ रे नपुसक !

अरे, ओ नपुसक
शिखडी के वशज
मेरा होता रहा हरण/चीर हरण/
तेरे सामने/तू देखता रहा/
बजाता रहा लाठी दीवार पर
उखाड़ता रहा पपड़िया फर्श की ।

वे/तेरे गाव के/
तेरे ही मोहल्ले के/आवारा/ऐयाश/
करते रहे शीलभग/पक्ति बद्ध/
जैसे मैं कोई तालावी थी/सिनेमाघर थी/
सभागार थी/ससद थी/
या कि ठिकाने की रखेल थी ।
आया था घोड़ी पर
सजधज कर
ढोल-धमाके बजाता/पटाखे छुड़ाता
तेरे ही गाव के/मोहल्ले के बराती थे ।
मेरी सहेलियो ने
मेरे गाववालो ने
मेरी मा ने/मेरे बापू ने ।
सीना फुलाया था तुझे देखकर ।
वार-वार गये थे
तेरी कद-काठी पर
एक-एक फेरे का तेरावचन
मेरी सुरक्षा का/रखवाली का/
भविष्य का/भरोसे का/
अलिखित वायदा-पत्र था।

मैंने भी लखा था
आरसी मे तेरा चेहरा/
सिहरी थी/आश्वस्त हुई थी/
चाहे तूने तोड़ा नही शकर-धनुष
मारा नही था तीर मछली की आख मे ।
मैने सरहाई थी अपनी माग
अपनी हथेली की मेहदी
अपना गैंदे-सा बदन/हिरनी-सी आखे
फाक-से होठ ।
मैंने माना था तुझे अजेय रखवाला
माना था-मेरी धूनी तू है ।
अरे! इतने-इतने तेरे बोले-अबोले आश्वासन/
वचन/सब 'फोकट' हो गये ।
बिना गाठ का गन्ना तक
नही हुआ
कवल ककड़ी-सा पट-पट टूट गया /
जब अधेरे के नर्क मे/ वे आवारा /ऐयाश
करते रहे मुझ से जबर-जिन्ना ।
जैसे मे बरसात के बाद की ज़मीन थी
किन्हीं ठग पचो की पचायत थी
कि किसी दादा मुख्य मत्री की
फसाई हुई सख्या थी
कि किसी सेठ की तालाबद फैक्टरी थी ।

अरे धृतराष्ट्र की औलाद !
तेरे लिए कौन सा था राज-पाट ?
तेरी तो कच्ची झोपड़ी थी ।
कच्ची उमर की मै थी
तेरी तो इच्छा मे मुझसे पली-पोसी गृहस्थी थी
इतने के लिए भी नही दिखा सका जौहर ?

लजा दी भुजा/मार लिया पित्ता-पानी /
सौप दिया मुझे पुसतैनी मासखोरो को
अस्मत खोरो को।
इसी पर कहता था
मैं तेरी वामागी हू /नागमती/पद्मिनी हू/
रानी रूपमती हू।
बोल नि सत्ते।
थूक दू तेरे मुह पर।
कहू, कि मैं
किसी की वामागी नही
वारागना हू।
जब चाहो आओ
रात बाद/माह बाद/वर्ष बाद/
पाच-पाच साल बाद।
नही उपजेगे कोख से
अभिमन्यु, भरत,बभ्रुवाहन,
पैदा होगे–अगर होगे–
बहुरूपिये/नक्काल/दलाल।
बधी भी रहू
तो तुझ जैसे का-पुरुष से/कु-पति से।
मै क्या गाव की मणि नही थी ?
कल की मा नही थी ?
क्या अनिश्चित अवाम तत्र की
अभागी मतपेटी थी।
ओ मेरे वैधानिक पति।
नही चाहिए अब तेरी शरण
कल भी अधेरे मे थी, आज भी हू
आनेवाले किसी भी कल के लिए
क्या सोचू ?
जो होना है वह हो।

बार बार नही

पहली बार नही है
कि तुम महिमा मडित आए
सभासदो पर
भाषा के गुच्छे फेकने लगे ।

जब भी तुम
अपने से डरे हो
तुम्हे कलई खुलने का शक हुआ
तुमने नीतियो के रेशमी कीड़े-छोड़े ।

पर इससे क्या होता है ?
एक रोशनी
चमड़ी को पार कर
पेट की खोखल से टकराती है
तुम्हारी भाषा की जुज टूट जाती है ।

अक्सर हुआ हे
तुम चेहरे पर मुस्कराहटे चिपका आए
तुम्हारी झिल्ली से
मुहासे और फुसिया चमकी है ।

कितने साल ! कितने साल !!
श्रोता अखण्ड पालथी मारे बैठेगा
तुम्हारा स्वाग सहेगा ?
जाब्ता जवाब देता है
तब शस्त्र उठता है ।
खदबदाई भीड़ के पास
आखे होती है और अभिक्रमण ।

फटता नही दूध

एक हवा
जो तुम्हारे कमरे और आगन मे
ठहरी है ।
एक तस्वीर
जो तुम्हारे जहन मे पैवस्त है ।
एक ऊब
जो तुम्हारे हर रिश्ते पर हावी है ।
तुम उन्हे पत्तो की तरह फेकते हो
वो गड्डी की तरह हाथ मे लौट आती है ।

तुम स्वायत्त हो
तुम्हारे हक हकूक साबुत हैं ।
तुम्हारी दृष्टि और शैली सलामत है ।
फिर क्यो, कोई फरेबी माहौल
तुम्हारी अक्ल हथेली पर रख देता है
तुम टुर जाते हो बाड़े की तरफ
एक टिचकारी मे ।
आदतन जी हुजूरी मे
गर्दन हिलाने लगते हो-हा, हू, ही ।

माना कि तुम्हारी दौड़ बालिश्त की है
माना तुम्हारी क्यारी का क्षेत्रफल बरायनाम है
तब भी कैसे महगाई को ताबीज की तरह बाधते हो
भत्ते के टुकड़े को राल टपकाते हुए लपक लेते हो
तुम्हारा खुद का राम-रहीम है या खाली खोखे हो !
कैसे दफ्तर मे, कॉफी हाउस मे,
बैठक मे ठहाके लगाते हो ?

मै उस हवा की बात कर रहा हू
जो आखो मे किरकिरी की तरह रड़कती है।
उस तस्वीर की बात कर रहा हू
जो साल-दर-साल चिथती जाती है।
मे उस ऊब और खटास की बात कर रहा हू
जो तुम्हे उबकाइयो की बदहाली देती है।
लेकिन फाड़ती नही दूध, न हिलाती है 'घी'।

काठ कठगड़ दे दो

वह जो
सर्दी, गर्मी, बरसात
बसत और पतझर मे
चिल्लाता है गली-गली
फेरी पर
अगड़ खगड़
काठ कठगड़
बोतल शीशी
डब्बे डिब्बी
कुछ भी दे दो
किलो तौल पर
नकदी ले लो ।
मस्त कलदर
थकता है जब
ठेला ठहरा
सुस्ताता है
चाय पकौड़ी
की करता दोपहरी ।
घर घर की
टूटी फूटी बेकार वस्तुए
उसके लिये नियामत ।
उसने औरत, बच्चो की
खगड़ आशाए
अगड़ अभिलाषाए
नही तराजू पर तोली
रखी चौपहिये पर ।
वे भी तो थी

खाली बोतल
पिचकी डिब्बी ।

जो भी पेट भराऊ लाता
भाग्य समझकर
बाट बाट कर खाता
दूजे दिन फिर टेर लगाता -
अगड़ खगड़
काठ कठगड़
कुछ भी दे दो
किलो तोल पर
नकदी ले लो ।

ससार एक ससार दो

मेरे वे दोस्त
साध कर साँस
लेकर अपना नाम
गोता लगाते है
पहुँच जाते है
सागर तल देश मे ।

उन्हे क्या मतलब
किनारे पर खड़ी मछेरने
किसका इन्तजार कर रही है
प्रतीक्षारत रक्तिम ऑखे लिये ?

सुना है कि सागर-तले
एक परी देश है
परी देश मोती, नीलम, पुखराज,
दाड़िम-रत्न वाला ।
नन्ही से लेकर सद्य यौवना परी-मछलियो का
खुश्बूदार, राग-स्पदित
साम्राज्य है ।

मेरे अजीज
युवराज बने
सौन्दर्य के उस प्रेरक मडल मे
राग-राग हो जाते हे
कल्पित करते हे, एक अलभ्य ससार
मूर्छना, चेतना हो जाती है उनके लिये ।

ओर वे मछेरने
सागर तीरे खड़ी
दूर-दूर तक फैकती है नजर

कि लहरो के फनो से जूझते
उनके पति, पिता, बेटे,
काले बिन्दु-से दीख जाये
कोई डाँड,कोई लग्गी,
धूप-घड़ी की कील,
आश्वस्त कर दे
कि गिरी नही है गाज
उनके पाल पर ।

सागर-तल मे मछली है
किनारे पर मछेरने हैं
एक अलौकिक ससार है मूर्छना-चेतना का ।
और वह अन्धेरे से
शापित कुआ
कितना मूक, कूटनीतिज्ञ है,
कि सूप मे रख
हिलाता-डुलाता है
झटके झपेटे देता है
फिर टाग देता है खूटियो पर ।

मेरे वे दोस्त
कुए से डरते है
सूप मे पड़-पड़े
अगूठा चूसते है ।

सागर-तल का परी देश
उनका रचना-ससार है
मछेरन की प्रतीक्षारत
रक्तिम आँखे
खोजती है बिन्दु
जो मछुवे हो
लहरो के फन तोड़ते ।

उपसंहार

खूटिया नावे

लो मै हटता हू
इस मच से–
जहा मै रहता रहा
क्षमता से ।

तुमने कहा-हम हथियाएगे ।
मैने तुम्हे दिया ।

अब लीक डालो
या भटको,
कुछ भी करो   हाथापाई, मारपीट,
हत्या, प्रतिहत्या ।

मडप उखाड़ो
शामियाने गिराओ
मै देखूगा तुम्हारा विद्रोह
हारे हुए व्यक्ति की तरह नही
पड़तालते सहयोगी की तरह ।

अगर तुम्हारी बुतशिकनी,
अराजकता, अन्यमनस्कता,
लेजाए तुम्हे बद खोह मे
या, तुम्हारी ही आवाज
तुम तक लोटकर आए सत्रासक,
हथेली मत टेकना धरती पर ।
आद्योपान्त तुम्हारी नकार
ढूढ-ही लेगी कोई सटीक समीकरण ।
मैंने भी नकारी थी

खूटिया, नावे, पुल
पिता की छड़ी ।

पिता

नाराज हर्गिज़ नही
हुए पिता ।
पिता, तलात तक पारदर्शी थे
गोकि,
उन की घड़ी थी
विसर्जित होने की ।

उन्होने सदा
धूप को जज्ब किया
हवा की स्फूर्ति को अतस्थ ।
नमस्कार किया हरियाली को
और कहा–
आभारी है यह देह
प्राण-क्रम की ।

जो भी था निकट दूर
परिचित अपरिचित
उसे आर्शीवाद दिया ।

तव
रूखसत ली
जैसे जागता शख्स
झपकी मे जाए ।

जैसे केले के पात पर
तैरता दिया
गुप्त हो जाए
भागीरथी मे
तिथि-पत्रक लिये ।

शीर्षक क्या होगा ?

कुछ भी हो सकता है
अनपेक्षित,
मोह-भग,आत्म विपर्यय,
हताशा । कुछ भी ।

एक सगतराश-आरी
अ-प्रीतिकर अनुभव के साथ
काटती चलेगी मेरा अश ।

घूमती रहेगी बाहर
ऋतु घड़ी ।

धूप निकलेगी
ठड ठिठुराएगी नसे
बसत, पतझड़, आधी, गर्द-गुब्बार,
बाजरे की,मक्की की जड़ी बालिया,
(सुट्टे - भुट्टे)
सब क्रम-अक्रम मे होगे
छपता रहूगा मे
कारबन के नीचे कागज-सा ।

कुछ भी स्थायी नही होगा
दौड़ती जाएगी चित्राकित पटकथा ।

मै घटता-घटता
फलता-झरता
बाटता-बटता
एक सास-बिन्दु रह जाऊगा ।

मेरी पटकथा, या
मेरी कविता का
शीर्षक क्या होगा ?

● ● ●



जन्म 15 अगस्त, 1931 पंजाब

शिक्षा

एम ए पीएच डी साहित्यरत्न

अध्यापन और शिक्षा, पत्रका

लेखन, निर्देशन, मुद्रण।

सम्मान आचार्य सम्मान

(राष्ट्रीय स्तर की नाट्य सम

कथा संग्रह घड़ी दो घड़ी,

फिर (पुरस्कृत), बिखरे वि

कदम् (उत्तर प्रदेश हिन्दी

पुरस्कृत), अ मायतार, ये

लोग, मम्मी ऐसी क्यों थी।

कविता संग्रह शायद तुम्हें प

नाटक बहादुरशाह जफर प

एकांकी, सदियोंसे सदियों तक (

अश्वत्थामा, रोशनीघर, चौरा(

गणगौर / जोगमाया, आदमी

शहद का महल, जब तक सांस

आस, पिंजड़ा टूटेगा (बाल ना

विविध संवेदना के बिम्ब (आ

गांधी दर्शन और शिक्षा, गांधी

दिशा (उत्तर प्रदेश हिन्दी स

पुरस्कृत), गांधी और भारत।